SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

नारी मुक्ति आंदोलन और हिंदी साहित्य

पूनम पाण्डेय, पी–एचडी, हिंदी विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
पूनम पाण्डेय, पी–एचडी
E-mail : poonampandaysid@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 15/10/2025
Revised on : 19/12/2025
Accepted on : 28/12/2025
Overall Similarity : 03% on 20/12/2025

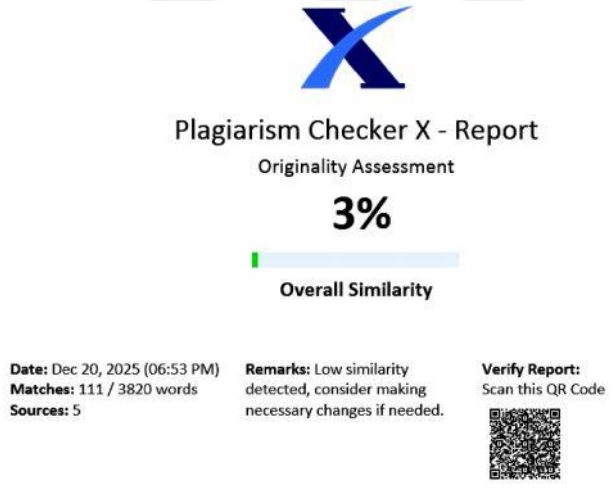

शोध सार

नारी मुक्ति आंदोलन समाज में महिलाओं को बराबरी का दर्जा, स्वाधीनता और गरिमा प्रदान करने की दिशा में किया गया एक सशक्त प्रयास है। इसका मूल उद्देश्य स्त्रियों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और वैचारिक रूप से सशक्त बनाना है। भारतीय समाज में लंबे समय तक नारी को पुरुष के अधीन माना गया, जिसके कारण उसे अनेक प्रकार के भेदभाव, शोषण और अत्याचारों का सामना करना पड़ा। ऐसे वातावरण में नारी मुक्ति आंदोलन ने स्त्री चेतना को जागृत करने का कार्य किया। हिंदी साहित्य ने इस आंदोलन को मजबूती प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्रियों के जीवन से जुड़े दुख, पीड़ा, संघर्ष और उनके आत्मसम्मान की भावना को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। हिंदी साहित्य के विभिन्न कालखंडोंकृभक्ति काल, आधुनिक काल और समकालीन काल में नारी की सामाजिक स्थिति पर गंभीर विचार किया गया है। जहाँ एक ओर नारी पर होने वाले अत्याचारों, रूढ़ियों और पितृसत्तात्मक सोच को उजागर किया गया, वहीं दूसरी ओर उसके अधिकारों, स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय की आवश्यकता पर बल दिया गया। महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती जैसी साहित्यकारों के साथ–साथ कई पुरुष लेखकों ने भी स्त्री जीवन की यथार्थपरक तस्वीर प्रस्तुत की। उनकी रचनाओं में स्त्री केवल सहनशील पात्र नहीं, बल्कि संघर्षशील और जागरूक व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है। इस प्रकार हिंदी साहित्य ने नारी मुक्ति आंदोलन को विचार और संवेदना दोनों स्तरों पर आगे बढ़ाते हुए समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

मुख्य शब्द

नारी, मुक्ति, चेतना, साहित्यिक विमर्श.

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास क्रम में स्त्री और पुरुष दोनों ने समाज के निर्माण, संवर्द्धन और संस्कार में अपनी–अपनी भूमिका का निर्वहन किया है, किंतु विकास की प्रक्रिया में जब पितृसत्ता ने सामाजिक व्यवस्था पर आधिपत्य स्थापित किया, तब स्त्री की स्वतंत्रता, स्वायत्तता और समानता का ह्रास होने लगा। नारी पूर्णतया पुरुष के अधीन होकर परतंत्रत जीवन के लिए अभिशप्त हो गई, किंतु समय के साथ जब स्त्रियों ने भी अपने अस्तित्व और अधिकारों की खोज प्रारंभ की तो यही खोज आगे चलकर नारी–मुक्ति आंदोलन के रूप में परिणत हो गया।

वैदिक कालीन नारी को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था तथा पिता विदुषी एवं योग्य कन्याओं की प्राप्ति के लिए विशेष प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान का आयोजन करता था। इस युग में कन्या के शिक्षा–दीक्षा की पर्याप्त व्यवस्था थी। ऋग्वेद में घोसा, लोपामुद्रा, विश्व–वारा आदि विदुषी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। स्त्रियों को पुरुषों के समान ही धार्मिक तथा सामाजिक अधिकार प्राप्त थे, किंतु युगानुरूप उनकी दशा में परिवर्तन होते रहे। ईसा पूर्व दूसरी सदी से लेकर तीसरी सदी ईस्वी तक लगातार होने वाले विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप न केवल समाज में अव्यवस्था फैली अपितु स्त्रियों की दशा भी प्रभावित हुई। पांचवीं सदी से लेकर 12वीं शताब्दी के कालखंड में उत्तरोत्तर उनकी दशा में ह्रास ही होता गया। मध्यकाल में मुस्लिम आक्रांताओं के भारत आगमन के साथ ही नारी का अस्तित्व घोर संकट में पड़ गया। आक्रांताओं से बचने के लिए उन्हें पर्दे में रहने के लिए बाध्य होना पड़ा साथ ही समाज में बहु पत्नी प्रथा का प्रचलन भी बढ़ गया तथा शिक्षा से उन्हें पूरी तरह वंचित कर दिया गया।

19वीं शताब्दी में समाज–सुधार आंदोलन के साथ–साथ स्त्रियों की शिक्षा और अधिकार के लिए आवाज़ें उठनी शुरू हुईं और यह काल स्त्री जागरण के प्रारंभिक चरण के रूप में जाना गया। 20वीं शताब्दी में राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्रियां प्रतिभागिता करने लगीं। शिक्षा के प्रसार ने उनमें आत्म–सम्मान और स्वाधीनता की भावना का संचार किया। इन आंदोलनों का प्रत्यक्ष प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा और युगीन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में नारी विषयक समस्याओं को स्थान देना प्रारंभ किया।

उद्देश्य

इस लेख का प्रमुख उद्देश्य समाज में स्त्री के स्थान, उसकी अस्मिता, संघर्ष और स्वतंत्रता के प्रश्नों को केंद्र में रखकर रचित साहित्य का सम्यक विश्लेषण करना है।

स्त्री–मुक्ति चेतना

स्त्री–मुक्ति चेतना से अभिप्राय उस मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक जागरूकता से है जो स्त्री को अपने अस्तित्व, अधिकार, स्वतंत्रता और अस्मिता के प्रति सजग बनाती है। यह पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के विरोध की भावना के साथ उसके अपने अस्तित्व की सार्थकता और समानता की खोज भी है। हिंदी साहित्य में स्त्री मुक्ति चेतना का विकास सदियों की यात्रा का परिणाम है। भक्ति युग की संत कवियत्रियों से लेकर आधुनिक और समकालीन लेखिकाओं तक यह यात्रा स्त्री के संघर्ष, आत्मबोध और अस्मिता की तलाश की यात्रा रही है।

भक्ति–युगीन नारी अस्मिता की चेतना

हिंदी का आदिकाल यद्यपि वीरगाथाओं तथा धार्मिक उपदेशों के रूप में रचा गया है फिर भी तदयुगीन वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार इस काव्य में नारी के 'वीरांगना' और 'कामिनी' दोनों रूप दृष्टिगत होती हैं। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन इस परंपरा के विरुद्ध नवजागरण का संदेश लेकर आया जिसमें मीरा, महादेवी, लालदेव और जनाबाई प्रभृति संत कवियत्रियों ने अपने अनुभव से यह प्रमाणित किया की मुक्ति केवल ईश्वर प्राप्ति

नहीं अपितु भीतर की स्वतंत्रता का अनुभव है। मीरा ने जब सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ते हुए 'मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो ना कोई' कहा तो इसका तात्पर्य केवल ईश्वर के प्रति समर्पण भर न होकर पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के विरोध का प्रतीक भी है। लाल देव और अक्का महादेवी ने भी ब्रह्म के प्रति अपने साधना के माध्यम से देह की सीमाओं का अतिक्रमण किया। उनके अनुसार स्त्री की मुक्ति की शुरुआत भीतर से होती है जो सामाजिक मान्यता की नहीं आत्म– स्वीकृति की प्रक्रिया है। भक्ति युगीन कवियत्रियों की यह चेतना स्त्री के भीतर के 'स्व' से साक्षात्कार करने की प्रथम प्रक्रिया थी। यद्यपि इसकी अभिव्यक्ति धार्मिक रूप में हुई परंतु इसमें निश्चित रूप से नारी मुक्ति चेतना का बीज निहित था। इस काल के कवियों – तुलसीदास, सूरदास और कबीर ने नारी को भक्ति और प्रेम की दृष्टि से चित्रित किया और उन्हें श्रद्धा, प्रेम और करुणा के जीवंत प्रतीक के रूप में देखा। भक्तिकालीन कवियों की दृष्टि में नारी न केवल भावनाओं की अस्रधारा है अपितु आध्यात्मिक उत्थान की सहयात्री भी है।

रीतिकालीन नारी

रीतिकालीन कवियों ने नारी को सौंदर्य और प्रेम की मूर्तिमान प्रतिमा के रूप में चित्रित किया। उन्होंने नारी के रूप, यौवन, अंग –प्रत्यंग, श्रृंगारिक भाव–भंगिमा तथा उसकी चंचलता का अत्यंत सूक्ष्म और कलात्मक वर्णन किया। इस काल की नारी मुख्यतः पुरुष दृष्टि से चित्रित है, जहां उसका अस्तित्व प्रेमिका, पतिव्रता या नायिका तक ही सीमित रहा। उसमें सामाजिक चेतना या आत्म–सत्ता की खोज का भाव दूर–दूर तक दृष्टिगत नहीं होता ।

आधुनिक काल (भारतेंदु से प्रेमचंद तक) में नारी चेतना

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल नारी मुक्ति चेतना की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। इस कालखंड की शुरुआत भारतेंदु युग से होती है जिसमें नारी के परंपरावादी दृष्टिकोण का समर्थन दिखाई देता है फिर भी यहां नारी को निरा भोग्या या उपेक्षित नहीं समझा गया। इस युग में उसकी दीन–हीन दशा पर कवियों और लेखकों की दृष्टि गई और उसके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव व्यक्त किया गया। भारतेंदु ने समाज में व्याप्त स्त्री शोषण, पर्दा प्रथा और अज्ञानता की आलोचना करते हुए स्त्री शिक्षा और स्वतंत्रता की वकालत की। इस युग के अन्य लेखकों – प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि ने भी नारी की दयनीय स्थिति पर चिंता प्रकट की। इस प्रकार इस युग में नारी– चेतना का आरंभिक और सकारात्मक स्वर सुनाई देता है, जिसने आगे चलकर नारी मुक्ति आंदोलन की वैचारिक नींव रखी।

इस युग के अन्य साहित्यकारों में मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कृतियों में नारी चरित्रों का सृजन पुरुषों की 'भोग्य' या 'काम्या' के रूप में नहीं बल्कि पुरुष की सहचारी के रूप में किया। साकेत, यशोधरा, विष्णु प्रिया उनकी नारी प्रधान कृतियां हैं। गुप्त जी कहते हैं कि ''वे नारी को मानवतावादी मूल्य, भावना शील दृष्टि और सामाजिक संपन्नता की कसौटी पर रखते हैं।'' अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अपनी कृति प्रिय प्रवास के माध्यम से नारी के चरित्र की राधा रूप में प्रेम और कर्तव्य भावना का अद्‌भुत सामंजस्य दिखाया है। ''सामाजिक सन्दर्भों में नारी संबंधी समस्याओं, बाल विवाह, अनमेल विवाह, बालिका वैधव्य पर न केवल इनका ध्यान गया वरन पीड़ित नारी के आक्रोश को भी व्यक्त किया।''[1]

प्रेमचंद युग हिंदी साहित्य में सामाजिक यथार्थ और मानवतावाद का युग है। प्रेमचंद ने नारी संवेदनशील, संघर्षशील और आत्म सम्मान से युक्त व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह की समस्या, स्त्रियों के प्रति अत्याचार, पर्दा प्रथा जैसे विषयों को अपनी रचनाओं में स्थान देकर नारी उत्थान की वकालत की। उनके उपन्यास सेवा सदन, निर्मला, गबन, कर्मभूमि और अनेक कहानियों में स्त्री की सामाजिक आर्थिक और भावनात्मक दशा का चित्रण है। इस युग में स्त्री घर की शोभा से बाहर निकलकर समाज की सक्रिय इकाई के रूप में दृष्टिगत होती है। उदाहरण स्वरूप कर्म भूमि उपन्यास की सुखदा को लिया जा सकता है जो पुलिस के सामने खड़े होकर कहती है, ''क्यों भाग रहे हो? यह भगाने का समय नहीं। छाती खोल कर खड़े होने का समय है। दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों का होम करते हो। भागने वालों की कभी विजय नहीं होती।''[2] यह

निश्चय ही नारियों के भीतर चेतना जागरण के सूत्रपात का संकेत है।

प्रगतिवाद और स्त्री के सामाजिक– सांस्कृतिक संघर्ष

1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ ही हिंदी साहित्य में यथार्थवाद के एक नए युग का आगाज हुआ। सामाजिक परिवर्तन इस युग के साहित्य का महत्वपूर्ण उद्देश्य था। अब स्त्री की समस्या को भावनात्मक स्तर से ऊपर उठकर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर प्रख्यापित किया गया। इस युग के कवियों की नारी आदर्श और कल्पना के उच्चासन पर आसीन सुकुमार भावना और पुरुष की चिरसंगिनी है। छायावादी कवियों ने काव्यगत रूढ़ियों और पुरानी मान्यताओं को ध्वस्त किया और नवीन का सृजन किया। नारियों के प्रति छायावादी कवियों के दृष्टिकोण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि उन्होंने यह अनुभव किया की मूल प्रश्न नारी स्वाधीनता का है। प्रश्न विवाह का नहीं प्रेम का है, बंधन का नहीं मुक्ति का है।

वस्तुतः छायावाद युग में ही स्त्री विमर्श का आरंभिक स्वर सुनाई देता है जिसमें कवियों ने पारंपरिक रूढ़ियों को चुनौती दिया तथा नारी को सम्मान और समानता का दर्जा दिया। यह एक महत्वपूर्ण बदलाव था, जहां स्त्री को केवल भोग्या या देवी के रूप में नहीं बल्कि एक स्वतंत्र और भावुक व्यक्तित्व के रूप में देखा गया। प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा ने स्त्री अस्मिता के प्रश्न को अपने साहित्य में उठाया। महादेवी वर्मा 'श्रृंखला की कड़ियां' में स्त्री की संवेदनशीलता, पीड़ा और आत्म संघर्ष को अभिव्यक्ति देते हुए कहती हैं, ''असंख्य विषमताओं का कारण स्त्री का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व को भूलकर विवेक शक्ति को खो देना है।''[3] पुनः वे कहती हैं कि ''आज की बदली हुई परिस्थितियों में स्त्री केवल उन्हीं आदर्श से संतोष ना कर लेगी जिनके सारे रंग उसके आंसुओं से धुल चुके हैं।''[4] सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने अपने साहित्य में स्त्री से जुड़ी प्रत्येक समस्याओं को बड़ी मुखरता से उठाया। उनके चिंतन में स्त्री स्वाधीनता का प्रश्न मुख्य था। निराला अपनी रचनाओं में स्त्रियों को सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति प्राप्त करने एवं अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा बारंबार देते हैं। वे लिखते हैं, ''प्राचीन शीर्णता ने नवीन भारत की शक्ति को मृत्यु की तरह घेर रखा है। घर की छोटी सी सीमा में बंधी हुई स्त्रियां आज अपने अधिकार, अपना गौरव, देश तथा समाज के प्रति अपना कर्तव्य सब कुछ भूली हुई हैं।''[5] वे लिखते हैं, ''हम लोग स्वयं जिस तरह से गुलाम हैं, उसी तरह अपनी स्त्रियों को गुलाम बना रखा है, बल्कि उन्हें दासों की दासियां बना रखा है। इस महादैन्य से उन्हें शीघ्र मुक्ति देनी चाहिए तभी हमारी दासता की बेड़ियाँ कट सकती हैं।''[6]

'श्रृंखला की कड़ियां' में महादेवी वर्मा स्त्री की उस दशा का उद्घाटन करना चाहती हैं जब स्त्री के लिए अन्य अधिकारों की बात ही क्या की जाए? जब उसे जीने के अधिकार से ही वंचित कर दिया गया था। वे कहती हैं, ''भविष्य में भारतीय समाज की क्या रूपरेखा हो? उसमें नारी की स्थिति कैसी हो? उसके अधिकारों की क्या सीमा हो? आदि समस्याओं का समाधान आज की जाग्रत और शिक्षित नारी पर निर्भर है। वह विरोध को ही चरम लक्ष्य मान ले और पुरुष से समझौते के प्रश्न को ही पराजय का पर्याय समझ ले तो जीवन की व्यवस्था अनिश्चित और विकास का क्रम शिथिल होता जाएगा।''[7]

1960–70 के दशक और पश्चात कालीन स्त्री मुक्ति आंदोलन एवं लेखन

1960–70 के दशक में स्त्री चेतना ने एक आंदोलन का स्वरूप धारण कर लिया जो आज साहित्य में एक केंद्रीय विषय बन चुका है। आज विश्व में मानवाधिकार संरक्षण के पुरोधाओं द्वारा स्त्रियों के प्रति होने वाले किसी भी प्रकार के अन्याय, शोषण, अत्याचार या भेदभाव का जबरदस्त विरोध किया जाना स्त्रियों के पूरी तरह पुरुषों के समक्ष खड़े होने की हकीकत को दर्शाता है। युगीन साहित्यकारों ने स्त्रियों को पितृसत्तात्मक व्यवस्था के चंगुल से बाहर निकालने के लिए आक्रामक लेखनी चलाई जिसमें विशेष रूप से महिला साहित्यकार अग्रणी भूमिका निभा रही हैं। इन महिला साहित्यकारों में मृणाल पांडे, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, तस्लीमा नसरीन, रमणिका गुप्ता, मालती जोशी आदि ने स्त्री देह, मन और आत्मा के संघर्ष को यथार्थ रूप दिया। मन्नू भंडारी की 'आपका बंटी' या प्रभा खेतान की 'छिन्नमस्ता' में स्त्री की अस्मिता और मुक्ति का जद्दोजहद स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

प्रभा खेतान लिखती हैं, ''स्त्री भली–भांति जानती है कि पितृ सत्ता की दमनकारी शक्ति उसे कितनी छूट दे सकती है कितनी नहीं। सदियों से उत्पीड़ित होती हुई स्त्री साहित्य जगत में भी कुंठित है। पुरुष स्वयं को व्यक्ति, विचार और व्यवस्था का प्रतीक मानता रहा है और स्त्री को अन्या, वस्तु, भोग्या और अज्ञेय। अन्या से भिन्न जो कुछ भी पुरुष को मिला उसको संगठित करने का प्रयास किया और उसका महिमामंडन किया।''[8] वे आगे लिखती हैं, ''मानव समाज में स्त्रियों ने सदैव पीड़ा झेली है। जरूरत है कि स्त्री अपनी मानवीय गरिमा और अधिकार को समझ कर सांस्कृतिक तथा मानवीय दृष्टिकोण के मूलभूत तत्वों का विश्लेषण करे और अपनी ही तरह समस्त स्त्रियों को चेतना की शक्ति दे जो संघर्षरत हैं तथा स्त्रिय समाज के विकास में सक्रिय हैं, वे जो समाज की नजरों से दूर कहीं किसी कोने में सुबक रही हैं, जिनके पास मानवीय गरिमा के नाम पर केवल अपना शरीर है, उन्हें जीने की प्रेरणा दें और साहित्य के विकास में नए दृष्टिकोण तथा वैकल्पिक अवधारणाओं को विकसित करें।''[9]

इस संबंध में मृदुला गर्ग का कथन है, ''नारीवाद आंदोलन और उससे उपजे स्त्रीवाद विमर्श का दीर्घकालिक मंतव्य यही था कि जितनी जल्दी संभव हो स्त्री दोयम दर्जे की प्राणी न रहे, उसे वे तमाम अधिकार प्राप्त हो जाएं जो पुरुषों के हैं इसलिए बतौर आधी दुनिया, हमदर्दी मांगने की जरूरत न रहे। यह सच है कि भारत में स्त्री को कानून सब अधिकार प्राप्त होने के बावजूद, समाज की पुरुषदंभी मानसिकता में कम बदलाव आया है फिर भी, जहां तक जागरूक और शिक्षित क्षेत्रों का सवाल है, स्त्री के मन में और कुछ हद तक पुरुषों के मन में भी, स्त्री की परंपरागत छवि बदली है।''[10]

स्त्री–मुक्ति को केंद्र में रखकर लिखने वाली इन लेखिकाओं का आशय पुरुष को दरकिनार कर अपना वर्चस्व स्थापित करना नहीं है, अपितु उन परंपराओं और रूढ़ियों से मुक्ति का है जो केवल स्त्री के लिए निर्धारित हैं और जिन्हें उनका नियति बना दिया गया है। स्त्री के मुक्ति के यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए मृणाल पांडे लिखती हैं, ''नारीवाद पुरुषों का नहीं उनके मानवीय घटाने वाले उसे छद्म मुखौटे का प्रतिकार करना रहा है, जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है और जिसके पीछे झूठी अहम्मन्यता और उत्पीड़क प्रवृत्ति के अलावा कुछ नहीं है।''[11] मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं, ''नारीवाद स्त्री विमर्श है। नारी की यथार्थ स्थिति के संबंध में चर्चा करना ही स्त्री विमर्श है।''[12]

निःसंदेह इन लेखिकाओं ने अपने साहित्य में उन समस्त मान्यताओं पर तीखा प्रहार किया है जो नारी के व्यक्तित्व निर्माण तथा प्रगति के रास्ते में रोड़ा रही हैं। विशेष रूप से उनके कथा साहित्य में पीड़ित, शोषित, प्रताड़ित, उपेक्षित, रूढ़ियों के जाल में जकड़ी स्त्री का यथार्थ परक चित्रण करने के साथ ही उनसे मुक्ति हेतु शिक्षित, जागरूक, अधिकारों के प्रति सजग नारी चरित्रों का सृजन हुआ है। नारी के ऊपर किए जाने वाले सतत अन्याय के विरुद्ध अधुना नारियां आक्रोश में भरकर नानाविधि से तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त कर रही हैं। इसे स्पष्ट करते हुए आशा रानी बोहरा लिखती हैं, ''हर कहीं पुरुष के खिलाफ सामान आक्रोश, असंतोष, अकुलाहट, सुलगाहट और विद्रोह जन्म ले रहा है।''[13] इसी प्रकार पुरुष के अहंवादी रवैये पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है, ''पुरुष अपने अहं के बशीभूत हो स्त्री के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ रहा है, और आज तक यदि पुरुष नारी को समझ लेगा तो समाज की सारी विषमताओं का स्वतः ही निराकरण हो जाएगा। आवश्यकता उसे समझने और महसूस करने की है।''[14] 20वीं शताब्दी के मुक्ति संघर्षों से नारी मुक्ति का संघर्ष अधिक व्यापक हो गया है। यह संघर्ष आत्मबोध, आत्मविश्लेषण और आत्माभिव्यक्ति का संघर्ष है। इस प्रकार स्त्री मुक्ति का प्रश्न किसी जाति, धर्म, वर्ग का न होकर सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सार्वदेशिक है। यह एक स्त्री का लोकतांत्रिक अधिकार भी है जिसे उसे हर हाल में मिलना ही चाहिए।

स्त्री–मुक्ति आंदोलन

भारत में स्त्री मुक्ति आंदोलन का सूत्रपात 19वीं शताब्दी में माना जा सकता है जब विभिन्न समाज सुधारकों ने सामाजिक सुधार आंदोलनों की शुरुआत की। राजा राममोहन राय, महादेव गोविंद रानाडे, स्वामी दयानंद सरस्वती, पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर आदि के समाज सुधार आंदोलनों में स्त्री मुक्ति एक केंद्रीय भूत तत्व रहा। इन्होंने स्त्रियों की शिक्षा, सती प्रथा, विधवा विवाह जैसी तत्कालीन ज्वलंत समस्याओं पर विचार केंद्रित किया और

एक व्यापक आंदोलन चलाया। राजा राममोहन राय ने स्त्रियों को स्वावलंबी बनाने के लिए उनके शिक्षा पर विशेष बल दिया, क्योंकि स्त्रियों की पराधीनता का एक महत्वपूर्ण कारण उनका अशिक्षित होना ही रहा है। नारियों के अधिकारों की बात करते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा था, ''महिला को प्रत्येक काल में असहाय, निर्बल एवं पराश्रित सिद्ध करने के स्थान पर समाज का दायित्व है कि वह महिला को स्वाभाविक विकास के सभी अवसर प्रदान करे, जो नारी का अधिकार है।''[15] इसी दौर में महात्मा गांधी के नेतृत्व में अनेक स्वतंत्रता संग्राम के ध्वजवाहकों ने नारियों का स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में प्रवेश कराया। महिला मताधिकारों की मांग इस आंदोलन में प्रमुखता से की गई। अपनी पुस्तक भारतीय समाज में नारी में नीरा देसाई लिखती हैं, ''भारत का जाग्रत वर्ग भी मानता है कि स्त्रियों को भी सम्मानजनक और जिम्मेदार नागरिक का स्थान मिलना चाहिए। अतः हम जोर देकर निवेदन करते हैं कि जब प्रतिनिधित्व संबंधी विधेयक तैयार किया जाए तब लिंग भेद के कारण हमें मताधिकार तथा भारत की सेवा करने के अधिकार से वंचित न रखा जाए।''[16]

20वीं सदी तक आते–आते नारी अपने अधिकारों के प्रति जागृत हो चुकी थी और इसीलिए इस कालखंड को स्त्री जागरण के नाम से भी जाना गया। अब वह अपनी अस्मिता, आत्मसम्मान और अधिकारों की प्राप्ति के लिए खुलकर आंदोलनों में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करने लगी। स्त्री जागरण के संबंध में राधा कुमार लिखते हैं, ''20वीं शताब्दी की शुरुआत में मैडम कामा तथा सरोजिनी नायडू जहां मातृ शक्ति का बयान देते हुए चेतावनी (याद रखो जो हाथ पालन झुलाते हैं वही दुनिया पर राज करते हैं) दीं, वहीं गांधी ने मातृ भाव के उद्धारक गुणों का उल्लेख करते हुए स्त्री को भोग की वस्तु समझने की खतरनाक प्रवृत्ति के प्रति भी चेताया।''[17] इस आंदोलन के दौरान महिलाओं को अपनी क्षमता, महत्व तथा शक्ति का भान हुआ और अपनी अदम्य इच्छा शक्ति और संघर्ष से वे मताधिकार जैसे अनेकों संवैधानिक अधिकार प्राप्त करने में सफल रहीं।

इस प्रकार नवजागरण के प्रभाव में जिस आधुनिक विचारधारा का भारतीय समाज में प्रवेश हुआ उसके फलस्वरूप साहित्य में भी स्त्री विषयक प्रश्न अति महत्वपूर्ण हो गए और इसका सीधा–सीधा और गहरा प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ा। यही वह समय था जब हिंदी साहित्य में 'देवरानी–जेठानी' जैसे प्रारंभिक उपन्यास स्त्री प्रश्न को केंद्र में रखकर सृजित हुए। पहली हिंदी महिला लेखिका बंग महिला ने 'दुलाई वाली' कहानी लिखी। इस संबंध में राधा कुमार लिखते हैं, ''20वीं शदी के आरंभ में महिलाओं के स्वायत्त संगठन बनने शुरू हो गए तथा कुछ ही दशकों में मसलन 30 और 40 के दशक तक नारी सक्रियता की एक विशेष श्रेणी का निर्माण हो गया।''[18] इन लेखिकाओं ने स्त्री विषयक प्रत्येक वर्जनाओं को तोड़ने का यथेष्टतम प्रयत्न किया और अपने निर्भीक लेखनी से स्त्री जीवन के गुप्त से गुप्त सच्चाई को आवाज दिया। पुरुष प्रधान समाज में नारी की सदियों से उत्पीड़न और शोषण की प्रवृत्ति का इन्होंने बेखौफ होकर प्रतिकार किया। पुरुष समाज ने जो यंत्रणाएं, अपमान, प्रतिघात स्त्री समाज को दिए हैं, हमारी ये क्रांतिकारी लेखिकाएं उन्हीं के तरीके से आज उन्हें वापस कर रही हैं।

निष्कर्ष

साहित्य में स्त्री मुक्ति चेतना और स्त्री मुक्ति आंदोलन के विमर्श ने यह प्रमाणित किया है कि स्त्रियां किसी भी रूप में पुरुषों से कम नहीं है बल्कि वह सृजन की धारा है जो जीवन को अर्थ और दिशा देती हैं। दरअसल इस आंदोलन ने भारतीय समाज को नई दृष्टि प्रदान किया है। यद्यपि यह भी एक सच्चाई है कि देश के पिछड़े और ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी अधिकांश महिलाएं ऐसी हैं जिन तक यह चेतना या तो पहुंची नहीं है और यदि पहुंची भी है तो आधी–अधूरी। फलतः बदलते हुए परिवेश में भी वे पितृ सत्तात्मक ढांचे वाली घिसी–पिटी मानसिकता के जीवन से पूरी तरह उबर नहीं पाई हैं। उनकी यही स्थिति स्त्री मुक्ति चेतना पर यह प्रश्न चिन्ह खड़े करती है कि क्या कानून बना देने मात्र से ही स्त्री सर्वत्र स्वतंत्र हो सकती है? निश्चय ही किसी भी आंदोलन की सफलता तभी संभव है जब समाज की चेतना में समग्र परिवर्तन का भाव जागृत हो जाए। हमारे साहित्यकार अपनी दमदार लेखनी से इस दिशा में सतत प्रयत्नशील हैं और हमें स्त्री की स्वतंत्रता, समानता, सम्मान और न्याय की दिशा में आगे बढ़ाने की प्रेरणा दे रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. ठाकुर, देवेश (1992) *प्रसाद के नारी चरित्र;* संकल्प प्रकाशन, मुंबई, पृ. 185।
2. कुलकर्णी, रेखा (2019) *हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में नारी,* आर.पी. आर. प्रकाशन, दिल्ली पृ. 84।
3. वर्मा, महादेवी (2013) *श्रृंखला की कड़ियां,* लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 63।
4. पुष्पा, मैत्रेयी (1996) स्त्री विमर्श की चेतना, *हंस पत्रिका,* अंक अक्टूबर 1996, पृ. 7।
5. शर्मा, रामविलास (1990) *निराला की साहित्य साधना,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 35।
6. वही, पृ. 35–36।
7. वर्मा, महादेवी (1995) *आधुनिक नारी और उसकी स्थिति पर एक दृष्टिः श्रृंखला की कड़ियां,* राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 45।
8. खेतान, प्रभा (2009) *उपनिवेश में स्त्री मुक्ति कामना की दस वार्ताएं,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 114।
9. वही।
10. गर्ग, मृदुला (2016) *साहित्य में नारी चेतना; समकालीन कथा साहित्य में स्त्री,* लेखन संपादक, दयानिधि मिश्र, उदयन मिश्र, प्रकाश उदय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 82।
11. पांडे, मृणाल (2011) *परिधि पर स्त्री,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 9।
12. यादव, राजेंद्र (1996) *हंस पत्रिका,* संपादक, अक्षय प्रकाशन नई दिल्ली, अंक अक्टूबर पृ. 75।
13. बोहरा, आशा रानी (1983) *भारतीय नारीः दशा दिशा,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 168।
14. निमावत, सुनीता (2016) दिनकर की नारी विषयक अवधारणाएं (आलेख), *मधुमति पत्रिका;* संपादक, रोहित गुप्ता, राजस्थान साहित्य अकादमी, राजस्थान, पृ. 45।
15. ताराचंद (1994) हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया; पब्लिकेशन डिविजन मिनिस्ट्री ऑफ़ इनफार्मेशन एंड ब्रॉडकास्टिंग, नई दिल्ली, पृ. 199।
16. देसाई, नीरा एवं ठक्कर, उषा (2011) *भारतीय समाज में महिलाएं,* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, पृ. 158।
17. कुमार, राधा (2017) *स्त्री संघर्ष का इतिहास,* वांणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 13।
18. वही, पृ. 202।

****